कलाएँ सबके लिये

डा0 अर्चना जोशी
व्याख्याता
राजकीय महाविद्यालय, राजस्थान

Reference to this paper should be made as follows:

डा0 अर्चना जोशी

कलाएँ सबके लिये,

Artistic Narration 2018, Vol. IX, No.2, pp.60-65

http://anubooks.com/?page_id=485

सारांश

प्रस्तुत लेख कला के विस्तृत सार्वभौमिक रूप का उल्लेख करता है। कला का आकार इतना विस्तृत है कि इसे न देश, जाति, समाज, माध्यम, सतह आदि किसी भी सीमा में नहीं बांधा जा सकता है और आज के समसामयिक समय में तो यह कथन और ज्यादा प्रासंगिक हो गया है।

कला का आभास सृष्टि के आरम्भ से ही है, पुरा मानव के लिए अपनी लाचारी का अन्त करने, आनंद के प्राकट्य या फिर आमोद प्रमोद हेतु शिल्प चित्रण के रूप में संभवतया कलाएं अस्तित्वमान हुई शनः शनः समाज विकसित हुए कलाओं का स्वरूप उनके साथ बदलता रहा।

भारतीय समाज अपनी जटिलताओं के कारण अनूठा रहा है यह जाति भेद, क्षेत्रीय भेद, वर्ग भेद, वेशभूषा, धर्म आदि की विभिन्नता अनेक प्रकार से पाई जाती है। हमारी प्राचीन वर्ण व्यवस्था यद्यपि अब उस रूप में नहीं परंतु फिर भी व्यवसाय के आधार पर संपूर्ण समाज आज भी वर्गों में विभाजित है ऐसे में कलाएं इसलिए भी महत्वपूर्ण हो जाती हैं कि वह किसी एक वर्ग अथवा व्यवसाय की होकर नहीं रहती। कला होने का अर्थ और अस्तित्व सिर्फ उसकी निर्मित मात्रा में सीमित नहीं है बल्कि इसमें है की उसका संबंध कितने लोगों से है और कितनों के संपर्क में आती है।

अर्थात वह अधिकाधिक लोगो द्वारा अनुभूत हो, देखी जाए और उन्हें प्रभावित करें तो उसकी सार्थकता कहीं अधिक बढ़ जाती है, ऐसी कला व्यक्तिवादी नहीं होती बल्कि वह कला सबके लिए कला कहीं जाएगी।

प्रोद्योगिकी के विकास में नवीन संभावनाओं तथा कंप्यूटर व नवीन प्रिंटिंग तकनीक के पड़ाव डालने के पश्चात तो कलाओं के दायरे बढ़ते गए और कलाऐं सहज ही सबके लिए हो गई।

***मुख्य शब्द** – पब्लिक आर्ट, लोक कला, जनमानस।*

"Beauty is Truth and Truth is Beauty" अंग्रेजी के विश्वविख्यात कवि 'कीट्स' ने ग्रशियन अर्न (कांच के पात्र) पर अंकित चित्रकला को देखकर यह वाक्य लिखा था। कला सत्य इसलिये क्योंकि वह शाश्वत सौन्दर्य है और शाश्वत इसलिये क्योंकि वह निरन्तर है। जब हम बात करते हैं कला की निरन्तरता की तो ससंदर्भ सजाज के प्रत्येक वर्ग की ओर अभिमुख होकर देखना अपेक्षित हो जाता है।

यूं तो कला का आभास सृष्टि के आरम्भ से ही है। पुरामानव के लिये अपनी लाचारी क्लान्तता तिरोहिन करने, आनन्द के प्राकट्य या फिर आमोद हेतु शिल्पचित्रण के रूप में सम्भवतः कलाएँ अस्तित्वमान हुई। शनैः शनैः समाज विस्तृत हुए कलाओं का सामंजस्य उसके साथ बदस्तूर चलता रहा। भारतीय समाज अपनी जटिलताओं के कारण अनूठा रहा है। यहाँ जाति भेद, क्षेत्रीय भेद, वर्ग भेद, वेशभूषा, धर्म आदि की विभिन्नता अनेक प्रकार से मुखरित है।

हमारी प्राचीन वर्ण व्यवस्था यद्यपि अब उस रूप में नहीं परन्तु फिर भी व्यवसाय के आधार पर सम्पूर्ण समाज आज भी प्रमुख रूप से ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य व शूद्र आदि में बँटा है। ऐसे में कलाएँ इसलिए भी महत्वपूर्ण हो जाती है कि वे किसी एक वर्ग अथवा व्यवसाय की होकर न रहें।

मेरा मन्तव्य है कि कला होने का अर्थ सिर्फ इसकी निर्मिति मात्र में सीमित नहीं है बल्कि उसका सम्बन्ध कितने लोगों से है और कितनों के सम्पर्क में आती है अर्थात वह अधिकाधिक लोगों द्वारा अनुभूत हो, देखी जाए और उन्हें प्रभावित करे और अगर वह उनके उपयोग में भी आए तो उसकी सार्थकता कहीं अधिक बढ़ जाती है। ऐसी कला व्यक्तिवादी नहीं होती बल्कि वह कला सबके लिये कला कही जाएगी। उदाहरण के तौर पर हम हवामहल को ही लें या इस तरह के अन्य स्थापत्य, मंदिरों या घरों के बाहर बने माण्डनों को ले सकते हैं जिन्हें देखने के लिये हमें विशेष चेष्टा कर कहीं (चित्रवीथिकादि में) जाने की आवश्यकता नहीं। इसके दिग्दर्शन तो हमें सड़कों पर, राह चलते हुए गली मुहल्लों में भी हो जाते हैं जो अहर्निश लाखों दर्शकों द्वारा देखे जाते है। उनके दैनंदिन जीवन का हिस्सा है।

प्रौद्योगिकी के विकास व नवीन सम्भावनाओं कम्प्यूटर व नवीन प्रिंटिंग तकनीक के पड़ाव डालने के पश्चात तो कलाओं के दायरे बढ़ते गये और कला सबके लिये हो गई। जब हम बात करते है कला वैविध्य की तो प्रत्येक प्रकार के दर्शकवर्ग पारखीवर्ग की अपनी पसन्द और अपनी अभिव्यक्ति के तरीके, इसी से कलाओं की विभिन्न किस्मों में अभिवृद्धि हुई, विभिन्नता सामने आई।

अतः जितने भाँति के परिवेश उतनी भाँति की अनुभूतियाँ व अभिव्यक्तियाँ, इसी प्रकार जितने भाँति के दर्शक उतनी ही भाँति की कलाएँ।

ग्राम्यकला जो कि एक बहुत बड़े भाग में विस्तृत है अपनी ऊर्जस्विता व ओजस्विता के साथ ग्राम्य समाज के सुख दुःखों को बांटती हुई सदियों से अपने उसी रूप में अविरल बहती आई है। प्रत्येक वय, वर्ग स्त्री–पुरुष सभी को आस्था विश्वास के स्त्रोतों को सींचती हुई घर की समृद्धि हेतु बनने वाले कलाभिप्राय अलंकार स्वास्तिक आदि प्रतीक चिन्हों के रूप में सृजित होने वाले सृजन तथा जनजातीय लोक विश्वास के आधार पर भी कला निर्मित होती रही जैसे– लोक कथाएँ, मोहर्रम के ताजिये, रथयात्रा उत्सव जिनमें छउ, मयूरभंज, रासलीला, कृष्णलीला, ख्याल, नौटंकी, तमाशा, अंकिया–नाट, कुटियट्टम आदि के नाम गिनाये जा सकते हैं।

शेखावाटी क्षेत्र के नवलगढ़ में चित्रित पोद्दार हवेली

शेखावाटी क्षेत्र में चित्रित हवेली

ये कलाएँ सहज, सर्वग्राह्य व अनंत है इसीलिए सबके लिये है। ग्राम्य समाज के किसी भी ग्रामीण को इन कलाओं से इतर करके जीवन की कल्पना ही नहीं।

धर्म की अनुवर्तिनी बन कला सबके लिये सम्भव बनी रही इसके माध्यम से जन सामान्य स्थापत्य कला से जुडा रहा और मंदिर, पिरामिड, गिरजा, मस्जिद चैत्य, स्तूप, पेगोड़ा इत्यादि से जुड़ी स्थापत्य निहित कलाएँ सबके लिये सहज लब्ध रही। यही वजह है कि जयपुर के मूर्ति मुहल्ले में सृजित होने वाली मूर्तिकला की दुंदुभी सिर्फ उस क्षेत्र तक पाबन्द न रह सकी बल्कि उसका घोष विश्व के किसी भी कोने में होने वाली प्राण प्रतिष्ठा में सुना जा सकता है। खजुराहो आदि मंदिरों के बाहर बनी कलाकृतियों ने स्थापत्य में कलाभिप्रायों को सबके लिये दर्शनीय बना दिया। यही बात नाथद्वारा की पिछवाइयों बिहार की मधुबनी के अतिरिक्त राजस्थान की पड़, छापे, पाने आदि के लिये है। यहाँ हमें मोहर्रम के ताजियों तथा रथयात्रा में प्रयुक्त कलात्मकता को विस्मृत नहीं कर देना चाहिये। लोक विश्वास के आधार पर समाज का एक बडा पक्ष कला से जुडा रहा और यहाँ कलाएँ सबके लिए सम्भव रहीं है।

जनजातीय धर्मो में अनेक भूतप्रेतात्माओं स्थानीय प्राकृतिक शस्तियों वृक्षों, पर्वतों, नदियों, पशुओं आदि की प्रतिमाएँ भी लोक विश्वास का केन्द्र रहीं। उसी प्रकार टेटूज हैं जिसे गोदने के नाम से भी जाना जाता है, प्राचीन काल से ही ग्रामीण व जनजातीय वर्ग में अतिलोकप्रिय कला के रूप में अपना अस्तित्व बनायें रहा और इसका विस्तार निरन्तर होता ही गया जिसका और अधिक लुभावना स्वरूप आम शहरों में अत्याधुनिक समाज का प्रतिनिधित्व करने वाली नई पीढ़ियों में परिलक्षित होता है जहाँ ये वस्त्रों के भीतर नहीं छिपाये जाते अपितु खुले बदन पर बहुतायत से बनाए जाते हैं। अन्य कलाओं की भाँति हस्तशिल्प एक ऐसी ही लोकप्रिय कड़ी है जिसने बहुसांख्यक वर्ग को कलाओं से जोड़े रखा है जिसके दर्शन हम बंधेज, टाई एण्ड डाई, कठपुतली कला, बाटिक कला, लाख की कृतियों, पेपरमेशी, प्लास्तर ऑफ पेरिस आदि में करते हैं। ये कलाएँ अपनी तकनीकी लिशेषताओं के लिये सम्पूर्ण विश्व में पसन्द की जाने लगी व लोकप्रियता के उच्च शिखर पर जा पहुंची।

इससे विस्तृत क्षेत्र में अगर कलाओं का जिक्र करें तो लगभग सम्पूर्ण समाज की प्रतिभागिता के लिये अगर कोई कला आज सबसे ज्यादा देखी परखी व पसन्द की जाती है वह है आजकी बहुत प्रचलित व्यािसायिक कला (कॉमर्शियल आर्ट) यह कला अनपढ़ निर्धन ग्रामीण वर्ग से लेकर शिक्षित

घनाढ्य से मेट्रोपोलिटन शहरों तक के सभी दर्शकों को जोड़े रखती है। तकनीकी प्रोद्योगिकी के विकास व प्रसार ने इसे माध्यम का लचीलापन देकर विस्तृत धरातल प्रदान लकया। आज यह अखबारों व पत्रिकाओं की परिधि से निकल कर थडियों, दुकानों, मकानों की दीवारों तथा सडकों के किनारे दूर से ही नजर आने वाले लिशाल होर्डिगंस् पर स्थान पा गयी हैं। जहाँ यह प्रतिदिन प्रातः काल से रात्रि तक हर राहगीर के जनमानस से जुड़ी रहती है। अब कला को समझने के मायने बदल गये है एक मकबरे के रूप में निर्मित ताजमहल, शेखावाटी की रिहायशी हवेलियाँ आज विश्व के लिये वर्क ऑफ आर्ट है तभी एक ओर जहाँ राहगीर बिगचेन, ऐफेल टावर, एल्बर्ट हॉल, सरगासूली, हवामहल आदि के स्थिर सौन्दर्य को देखने का अभ्यस्त हो चुका होता है वहीं सडकों पर उगे विज्ञापन वाले इन होर्डिग्स पर के लिज्ञापनों में नित–नवीन बदलते रूपाकारों को देखने को भी बेताब रहता है।

राजस्थान के सवाई माधोपुर क्षेत्र में लोक मंडाना कला

राजस्थान के सवाई माधोपुर में लोक मंडाना कला

जयपुर लोक प्रांगण में स्थापित स्थापत्य कला का अनूठा उदाहरण 'हवा महल'

फिल्मी संगीत की स्वर लहरियाँ व टेलीविजन ने भी कला को नागरिकों के दैनिक जीवन का हिस्सा बना दिया है जिसमें न सिर्फ चाक्षुष कला का प्राकट्य होता है अपितु श्रव्य व अन्य ललित कलाओं के सुन्दर सामंजस्य का रसास्वादन भी जनमानस को आल्हादित किये रखता है।

कलाएँ आज हमारी आश्यकताओं के साथ गुँच सी गई है। जैसे–निमंत्रण पत्रिकाओं को ही लें अर्थात यहाँ हमें भारतीय मुख्य बुक आर्ट की चर्चा करना नहीं भूलना चाहिये जिसके दर्शन हम मांगलिक अवसरों पर प्रयुक्त होने वाली बधाई व निमंत्रण पत्रिकाओं के रूप में करते हैं। रस्मों रिवाजों से नवाजे गये इस देश में हर परिवार वर्ष भर इन पत्रिकाओं के आदान–प्रदान को निभाता है। प्राचीनकाल में कुण्डलियों की भाँति बनने वाली पत्रिकाओं में अब नित–नवीन कला स्वरूपों का प्रयोग होता है और हर बार एक नवीन पत्रिका अपने भिन्न व खास स्वरूप में हमारे हाथों में होती है।

जैसे गहने हमारी आवश्यकता हैं और उसके विभिन्न आकार—डिजाइन्स Work of Art है, अपने विभिन्न माध्यम लिये जैसे Pop Art। एक कनेडियन नोवलिस्ट मार्गेट के शब्दों में 'popular art is the dream of society it does not examine itself'। उदाहरण के लिये धार्मिक कलेण्डर जो भारतीय जनजीवन में अपना विशिष्ट स्थान रखते हैं अर्थात रूचि अनुसार सदा से पसन्द किये जाते रहते हैं। जैसे भारतीय नारी की पसन्द साड़ी जिसके प्रिंट्स अद्वितीय होते हैं और हाल ही में भारत की ऐयर लाइन्स के एक जहाज के पीछे के भाग पर पटोला साड़ी प्रिंट की अनुकृति का होना सच में इस शीर्षक को सार्थक कर देता है कि कलाओं के दायरे सीमित नहीं है और वह सबके लिये हैं।

Louise-Bourgeois की कृति

Yoyoi-Kusama की कृति येलो पंपकिन

हाल ही में जमीन के नीचे तक निर्मित हो रहे दिल्ली मेट्रो रेल स्टेशन को सजाने हेतु राजस्थान स्कूल आफ आर्ट के चित्रकला विभाग के शिक्षकों व विद्यार्थियों के योगदान से सिरेमिक टाइलों के कई विशाल म्यूरल सृजित किये गये। इन म्यूरल्स में कहीं पारम्परिक रूपाकारों को नवीन आयामों के साथ प्रस्तुत किया गया है तो कहीं समसामयिक रूपाकारों को। यह सृजन राजस्थान की पारम्परिक व निवीन कलाओं का सृजन मात्र ही न रहकर work of Art के रूप में दीर्घ काल तक यात्री दर्शकों की स्मृति में रहेगा। ठीक उसी प्रकार जैसे लन्दन के Tube stations पर चित्रित प्राचीन अमेरिकन 'ऐण्टेक' सभ्यता के रूपाकार मेरे चित्त में आज तक चिरस्मरणीय हैं और रहेंगे।

कला से जनमानस के जुड़ाव की परम्परा हमें अपने पूवजों से भी मिली है जिन्होंने कला के अद्वितीय नमूने सांजोये ही नहीं अपितु हमें कला से भावनात्मक जुड़ाव की विरासत भी दी है जिसका मिजाज भले ही समय के बदलाव वश कमोबेश बदल गया है। आज का कला सृजन (क्षणिक इंस्टालेशन) समकालीन परिवेश को प्रदर्शित करता हुआ, भी जनमानस को जोडे रखता है। यूँ तो मध्यकाल से ही विवाहोत्सवादि के अवसरों के साथ ही भवनों की भित्तियाँ पुनः नवीन चित्रकारी में अभिमंडित की जाने लगी थीं सृजन के इस शीघ्रकालिक स्थानान्तरण के स्वरूप ने आधुनिक काल में अतिशीघ्र स्थानान्तरण का स्थान ले लिया है। राबर्ट स्मिथसन (स्पाइरल जेटी), वॉल्टर डे मारिया (द लाइटिंग फील्ड), रिर्चड लॉग (ए लाइन मेड बाइ वॉकिंग), क्रिस्टो और जेनी (द अमलाज) व सुदर्शन पटनायक की कलाकृतियों की भाँति प्रतिदिन रेत आदि माध्यम में बनने वाली कलाभिप्राय जितनी शीघ्रता से चर्चा में आते हैं उतनी ही शीघ्र कुछ घंटों में ही तिरोहित हो जाते हैं या अपने परिवर्तित स्वरूप में होते हुए सबके लिये कला

का सबसे समकालीन उदाहरण प्रस्तुत करते हैं। आज के समसामयिक कलाकार जिनकी कला आज के युग का प्रतिनिधित्व करती है सभी प्रकार के बन्धनों व सीमाओां को लाँघ म्यूरल्स, मोजाइक्स, ग्लासविण्डोवर्क, सिरेमिक वर्क इन्स्टालेशन आदि किसी भी माध्यम धरातल पर किसी भी तकनीक में सिर्वत्र दर्शनीय है।

कई बार नदी अपने सीमित दायरों को छोड़ अपने पाट बहुत विस्तृत कर वहाँ तक पहुँच जाती है जहाँ अधिक से अधिक जन उसे पा सके। ठीक उसी प्रकार लगता है कि कलाओं ने अपने सीमित दायरे छोड अपने कूल अधिकतम विस्तृत कर लिये हैं जहाँ हर कोई इसका आस्वादन कर आनन्दित है।

संदर्भ सूची

1. महेंद्र भानावत, सांस्कृति के रंग, भारतीय लोक कला मांडलः उदयपुर, 1979, पृष्ठ **37.**
2. वीणा विद्यार्थी वएं सुरेंद्र सिंह चौहान, हमारी विरासत, सांस्कृति विभागः उत्तर प्रदेश, पृष्ठ **64.**
3. सुषमा सिंह, लोक कला, सुकृति प्रकाशनः हरियाणा, 2004 , पृष्ठ **46.**
4. प्रभा पंवार, आलेखन, राज्य ललित कला अकादमी, लखनऊ, पृष्ठ सांख्या **16.**
5. कला त्रैमासिक, लोक कला लिशेषाांक, जनवरी से मार्च 2002, राज्य ललित कला अकादमीः लखनऊ, पृष्ठ **5.**
6. देवीलाल सांभर, लोक कला की पृष्ठभूमि, आकृति जयपुर, 1967, पृष्ठ **8.**
7. एककेश्वर प्रसाद हटवाल, विज्ञापन कला, हिंदी ग्रंथ अकादमीः जयपुर, 1989, पृष्ठ **25.**
8. Annals of the fine arts for1819, Johan sartain, vol-4, USA, Pg. **638**.
9. The everyday practice of public art space and social inclusion 2015 UK routledge Pg. **15.**